ओ३म्

तत्सत्परमात्मने नमः ।।

अथ द्वितीयः प्रकाशः

ओ३म् सहनाववतु सहनौ भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्ति ।। १ ।।

तैत्तिरीयारण्यके ब्रह्मानन्दवल्ली प्रपाठक १० । प्रथमानुवाकः ।। १ ।।

व्याख्यान—हे सहनशीलेश्वर ! आप और हम लोग परस्पर प्रसन्नता से रक्षक हों, आपकी कृपा से हम लोग सदैव आपकी ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें तथा आपको ही पिता, माता, बन्धु, राजा, स्वामी, सहायक, सुखद, सुहृद्, परमगुर्वादि जानें, क्षणमात्र भी आपको भूल के न रहें, आपके तुल्य वा अधिक किसी को कभी न जानें, आपके अनुग्रह से हम सब लोग परस्पर प्रीतिमान्, रक्षक, सहायक, परम पुरुषार्थी हों, एक दूसरे का दुःख न देख सकें, स्वदेशस्थादि मनुष्यों को अत्यन्त परस्पर निर्वैर प्रीतिमान् पाखण्डरहित करें "सह नौ, भुनक्तु" तथा आप और हम लोग परस्पर परमानन्द का भोग करें, हम लोग परस्पर हित से आनन्द भोगें कि आप हमको अपने अनन्त परमानन्द के भागी करें, उस आनन्द से हम लोगों को क्षण भी अलग न रक्खें "सह वीर्य्यं, करवावहै" आपकी सहायता से परमवीर्य जो सत्यविद्यादि उसको परस्पर परमपुरुषार्थ से प्राप्त हों। "तेजस्विनावधीतमस्तु" हे अनन्त विद्यामय भगवन् ! आपकी कृपादृष्टि से हम लोगों का पठन-पाठन परम विद्यायुक्त हो तथा संसार में सबसे अधिक प्रकाशित हों और अन्योन्यप्रीति से परमवीर्य पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्त्ती राज्य भोगें, हम में सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों और आप हम लोगों पर अत्यन्त कृपा करें जिससे कि हम लोग नाना पाखण्ड, असत्य, वेदविरुद्ध मतों को शीघ्र छोड़ के एक सत्य-सनातन मतस्थ हों, जिससे समस्त वैरभाव के मूल जो पाखण्डमत, वे सब सद्यः प्रलय को प्राप्त हों "मा, विद्विषावहै" और हे जगदीश्वर ! आपके सामर्थ्य से हम लोगों में परस्पर विद्वेष 'विरोध' अर्थात् अप्रीति न रहै, जिससे हम लोग कभी परस्पर विद्वेष विरोध न करें किन्तु सब तन, मन, धन, विद्या इनको परस्पर सबके सुखोपकार में परमप्रीति से लगावें "ओ३म् शान्तिः, शान्ति, शान्तिः" हे भगवन् ! तीन प्रकार के सन्ताप जगत् में हैं—एक आध्यात्मिक (शारीरिक) जो ज्वरादि पीड़ा होने से होता है; दूसरा आधिभौतिक जो शत्रु, सर्प, व्याघ्र, चौरादिकों से होता है; और तीसरा आधिदैविक जो मन, इन्द्रिय, अग्नि, वायु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि,

अतिशीत, अत्युष्णतेत्यादि से होता है; हे कृपासागर ! आप इन तीनों तापों को शीघ्र निवृत्ति करें जिससे हम लोग अत्यानन्द में और आपकी अखण्ड उपासना में सदा रहें।

हे विश्वगुरो ! मुझको असत् (मिथ्या) और अनित्य पदार्थ तथा असत् काम से छुड़ा के सत्य तथा नित्य पदार्थ और श्रेष्ठ व्यवहार में स्थिर कर। हे जगन्मङ्गलमय ! (सर्वदुःखेभ्यो मोचयित्वा सर्वसुखानि प्रापय) सब दुःखों से मुझको छुड़ा के, सब सुखों को प्राप्त कर। (हे प्रजापते ! सुप्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन परमैश्वर्य्येण संयोजय) हे प्रजापते ! मुझको अच्छी प्रजा पुत्रादि, हस्त्यश्व, गवादि, उत्तम पशु, सर्वोत्कृष्ट विद्या और चक्रवर्ती राज्यादि परमैश्वर्य जो स्थिर परमसुखकारक उसको शीघ्र प्राप्त कर। हे परमवैद्य ! (सर्वरोगात्पृथक्कृत्य नैरोग्यन्देहि) सर्वथा मुझको सब रोगों से छुड़ा के परम नैरोग्य दे। [हे सर्वान्तर्यामिन् सदुपदेशक शुद्धिप्रद !] (मनसा, वाचा, कर्मणा अज्ञानेन प्रमादेन वा यद्यत्पापं कृतं मया, तत्तत्सर्वं कृपया क्षमस्व ज्ञानपूर्वक पापकरणान्निवर्त्तयतु मां) मन से, वाणी से और कर्म से अज्ञान वा प्रमाद से जो-जो पाप किया हो किंवा करने का हो, उस-उस मेरे पाप को क्षमा कर ज्ञानपूर्वक पाप करने से मुझको रोक दे, जिससे मैं शुद्ध होके आपकी सेवा में स्थिर होऊं। (हे न्यायाधीश ! कुकामकुलोभकुमोहभयशोकालस्येर्ष्याद्वेषप्रमाद विषयतृष्णानैष्ठुर्याभिमानदुष्टभावाविद्याभ्यो निवारय, एतेभ्यो विरुद्धेषूत्तमेषु गुणेषु संस्थापय माम्) हे ईश्वर ! कुकाम कुलोभादि पूर्वोक्त दुष्ट दोषों को स्वकृपा से छुड़ा के श्रेष्ठ कामों में यथावत् मुझको स्थिर कर, मैं अत्यन्त दीन होके यही मांगता हूं कि मैं आप और आपकी आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूं। हे प्राणपते, प्राणप्रिय, प्राणपितः प्राणाधार, प्राणजीवन, स्वराज्यप्रद ! मेरे प्राणपति आदि आप ही हो, मेरा सहायक आपके विना कोई नहीं। हे महाराजाधिराज ! जैसा सत्य न्याययुक्त अखण्डित आपका राज्य है, वैसा न्यायराज्य हम लोगों का भी आपकी ओर से स्थिर हो, आपके राज्य के अधिकारी किङ्कर अपने कृपाकटाक्ष से हमको शीघ्र ही कर। हे न्यायप्रिय ! हमको भी न्यायप्रिय यथावत् कर। हे धर्माधीश ! हम को धर्म में स्थिर रख। हे करुणामय पितः ! जैसे माता और पिता अपने सन्तानों का पालन करते हैं, वैसे ही आप हमारा पालन करो ॥ १ ॥

मूल स्तुति

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥ यजुर्वेदे। अध्याय ४०। मन्त्र ८॥

व्याख्यान—"स, पर्यगात्" वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है, "शुक्रम्" सब जगत्" का करने वाला वही है "अकायम्"

और वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता क्योंकि वह अखण्ड और अनन्त, निर्विकार है, इससे देहधारण कभी नहीं करता, उससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है, इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता "अव्रणम्" वह अखण्डैकरस अच्छेद्य, अभेद्य, निष्कम्प और अचल है, इससे अंशांशिभाव भी उसमें नहीं है क्योंकि उसमें छिद्र किसी प्रकार से नहीं हो सकता "अस्नाविरम्" नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध (निरोध) भी उसका नहीं हो सकता, अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर का कोई आवरण नहीं हो सकता "शुद्धम्" वह परमात्मा सदैव निर्मल अविद्यादि, जन्म, मरण, हर्ष, शोक, क्षुधा, तृषादि दोषोपाधियों से रहित है, शुद्ध की उपासना करने वाला शुद्ध ही होता है और मलिन का उपासक मलिन ही होता है "अपापविद्धम्" परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता क्योंकि वह सदैव न्यायकारी ही है "कविः" त्रैकालज्ञ (सर्ववित्) महाविद्वान् जिसकी विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले सकता "मनीषी" सब जीवों के मन (विज्ञान) का साक्षी सबके मन का दमन करने वाला है "परिभूः" सब दिशा और सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, सबके ऊपर विराजमान है "स्वयम्भूः" जिसका आदिकारण माता, पिता, उत्पादक कोई नहीं किन्तु वही सबका आदिकारण है "याथातथ्यतोर्था-न्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः" उस ईश्वर ने अपनी प्रजा को यथावत् सत्य, सत्यविद्या जो चार वेद उनका सब मनुष्यों के परमहितार्थ उपदेश किया है, उस हमारे दयामय पिता परमेश्वर ने बड़ी कृपा से अविद्यान्धकार का नाशक, वेदविद्या-रूप सूर्य्य प्रकाशित किया है और सबका आदिकारण परमात्मा है ऐसा अवश्य मानना चाहिये, ऐसे विद्यापुस्तक का भी आदिकारण ईश्वर को ही निश्चित मानना चाहिये, विद्या का उपदेश ईश्वर ने अपनी कृपा से किया है क्योंकि हम लोगों के लिये उसने सब पदार्थों का दान किया है तो विद्यादान क्यों न करेगा। सर्वोत्कृष्ट विद्या पदार्थ का दान परमात्मा ने अवश्य किया है तो वेद के बिना अन्य कोई पुस्तक संसार में ईश्वरोक्त नहीं है, जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है वैसा ही वेद पुस्तक भी है, अन्य कोई पुस्तक ईश्वरकृत, वेदतुल्य वा अधिक नहीं है, अधिक विचार इस विषय का "सत्यार्थप्रकाश" मेरे किये ग्रन्थ में देख लेना ॥२॥

मूल प्रार्थना

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ ३ ॥ यजु० ३६ । १८ ॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल महावीर ईश्वर ! "दृते" हे दुष्टस्वभावनाशक 'विदीर्णकर्म' अर्थात् विज्ञानादि शुभ गुणों का नाशकर्म करने वाला मुझको मत रक्खो (मत करो) किन्तु उससे मेरे आत्मादि को पृथक् रख के विद्या सत्य धर्मादि शुभगुणों में सदैव अपनी कृपा सामर्थ्य से स्थित करो "दृꣳह, मा" हे परमैश्वर्यवन

भगवन् ! धर्म्मार्थकाममोक्षादि तथा विद्या विज्ञानादि दान से अत्यन्त मुझको बढ़ा "मित्रस्येत्यादि०" हे सर्वसुहृदीश्वर सर्वान्तर्यामिन् ! सब भूत प्राणीमात्र मित्र की दृष्टि से यथावत् मुझको देखें, सब मेरे मित्र हो जायँ, कोई मुझसे किञ्चिन्मात्र भी वैर दृष्टि न करे "मित्रस्याऽहं चेत्यादि" हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से मैं भी निर्वैर होके सब भूत प्राणी और अप्राणी चराचर जगत् को मित्र की दृष्टि से स्वात्म स्वप्राणवत् प्रिय जानूं अर्थात् "मित्रस्य, चक्षुषेत्यादि" पक्षपात छोड़ के सब जीव देहधारी मात्र अत्यन्त प्रेम से परस्पर वर्त्ताव करें, अन्याय से युक्त होके कभी किसी पर भी न वर्तें, यह परमधर्म का सब मनुष्यों के लिये परमात्मा ने उपदेश किया है, सबको यही मान्य होने योग्य है ।। ३ ।।

मूल स्तुति

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।

तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः ॥ ४ ॥ यजु० ३२ । १ ॥

व्याख्यान—जो सब जगत् का कारण एक परमेश्वर है, उसी का नाम अग्नि है (ब्रह्म ह्यग्निः शतपथे) सर्वोत्तम, ज्ञानस्वरूप, जानने के योग्य, प्रापणीयस्वरूप और पूज्यतमेत्यादि अग्नि शब्द का अर्थ है "आदित्यो वै ब्रह्म, वायुर्वै ब्रह्म, चन्द्रमा वै ब्रह्म, शुक्रं हि ब्रह्म, सर्व जगत्कर्तृ ब्रह्म, ब्रह्म वै बृहत्, आपो वै ब्रह्मेत्यादि" शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण हैं "तदादित्यः" जिसका कभी नाश न हो और स्वप्रकाश-स्वरूप हो, इससे परमात्मा का नाम आदित्य है "तद्वायुः" सब जगत् का धारण करने वाला, अनन्त बलवान्, प्राणों से भी जो प्रियस्वरूप है, इससे ईश्वर का नाम वायु है पूर्वोक्त प्रमाण से, "तदु चन्द्रमाः" जो आनन्दस्वरूप और स्वसेवकों को परमानन्द देने वाला है, इससे पूर्वोक्त प्रकार से चन्द्रमा परमात्मा को जानना "तदेव, शुक्रम्" वही चेतनस्वरूप ब्रह्म सब जगत् का कर्त्ता है "तद्ब्रह्म" सो अनन्त चेतन सबसे बड़ा है और धर्मात्मा स्वभक्तों को अत्यन्त सुख विद्यादि सद्गुणों से बढ़ाने वाला है "ता आपः" उसी को सर्वज्ञ चेतन सर्वत्र व्याप्त होने से 'आप' नामक जानना "स, प्रजापतिः" सो ही सब जगत् का पति (स्वामी) और पालन करने वाला है, अन्य कोई नहीं, उसी को हम लोग इष्टदेव तथा पालक मानें, अन्य को नहीं ।। ४ ।।

मूल प्रार्थना

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये ।

वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥ ५ ॥ यजु० ३६ । १ ॥

व्याख्यान—हे करुणाकर परमात्मन् ! आपकी कृपा से मैं ऋग्वेदादिज्ञानयुक्त (श्रवणयुक्त) होके उसका वक्ता होऊं तथा यजुर्वेदाभिप्रायार्थ सहित सत्यार्थमननयुक्त मन को प्राप्त होऊं, ऐसे ही सामवेदार्थनिश्चय निदिध्यासन सहित प्राण को सदैव प्राप्त

होऊं "वागोजः" वाग्बल, वक्तृत्वबल, मनोविज्ञानबल मुझको आप देवें, अन्तर्यामी की कृपा से मैं यथावत् प्राप्त होऊं "सहौजः" शरीर बल नैरोग्यदृढ़त्वादि गुणयुक्त को मैं आपके अनुग्रह से सदैव प्राप्त होऊं "मयि, प्राणापानौ" हे सर्वजनजीवनाधार ! प्राण (जिससे कि ऊर्ध्व चेष्टा होती है) और अपान (अर्थात् जिससे नीचे की चेष्टा होती है) ये दोनों मेरे शरीर में सब इन्द्रिय, सब धातुओं की शुद्धि करने तथा नैरोग्य बल पुष्टि सरलगति कराने और मर्मस्थलों की रक्षा करने वाले हों, उनके अनुकूल प्राणादि को प्राप्त होके आपकी कृपा से हे ईश्वर ! सदैव सुखी होके आपकी आज्ञा और उपासना में तत्पर रहूँ ।। ५ ।।

मूल स्तुति

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।

यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।। ६ ।। यजु० ३२ । १० ।।

व्याख्यान—वह परमेश्वर हमारा "बन्धुः" दुःखनाशक और सहायक है तथा "जनिता" सब जगत् तथा हम लोगों का भी पालन करने वाला पिता तथा हम लोगों के कामों की सिद्धि का विधाता (पूर्ण काम की सिद्धि करने वाला) वही है, सब जगत् का भी विधाता (रचने और धारण करने वाला) एक परमात्मा ही है, अन्य कोई नहीं "धामानि वेदेत्यादि" "विश्वा" सब 'धाम' अर्थात् अनेक लोक-लोकान्तरों को रच के अनन्त सर्वज्ञता से यथार्थ जानता है, वह कौन परमेश्वर है ? कि जिससे देव अर्थात् विद्वान् लोग (विद्वाᳬसो हि देवाः । शतपथ ब्रा०) अमृत, मरणादि दुःखरहित मोक्षपद में सब दुःखों से छूट के सर्वव्यापी पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो के परमानन्द में सदैव रहते हैं, "तृतीये"० एक स्थूल (जगत् पृथिव्यादि) दूसरा सूक्ष्म (आदिकारण) तीसरा—सर्वदोषरहित, अनन्तानन्दस्वरूप परब्रह्म, उस धाम में "अध्यैरयन्त" धर्मात्मा विद्वान् लोग स्वच्छन्द (स्वेच्छा) से वर्त्तते हैं, सब बाधाओं से छूट के विज्ञानवान् शुद्ध होके देश काल वस्तु के परिच्छेदरहित सर्वगत "धामन्" आधारस्वरूप परमात्मा में रहते हैं, उससे दुःखसागर में कभी नहीं गिरते ।। ६ ।।

मूल प्रार्थना

यतो यतः समीहसे ततो नोऽअभयं कुरु ।

शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ।। ७ ।। यजु० ३६ । २२ ।।

व्याख्यान—हे महेश्वर, दयालो ! जिस-जिस देश से आप "समीहसे" सम्यक् चेष्टा करते हो उस-उस देश से हमको अभय करो अर्थात् जहां-जहां से हमको भय

प्राप्त होने लगे, वहां-वहां से सर्वथा हम लोगों को अभय (भयरहित) करो तथा प्रजा से हमको सुख करो, हमारी प्रजा सब दिन सुखी रहै, भय देने वाली कभी न हो तथा पशुओं से भी हमको अभय करो, किंच किसी से किसी प्रकार का भय हम लोगों को आपकी कृपा से कभी न हो, जिससे हम लोग निर्भय होके सदैव परमानन्द को भोगें और निरन्तर आपका राज्य तथा आपकी भक्ति करें ।। ७ ।।

मूल स्तुति

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ८ ॥

यजु० ३१ । १८ ॥

व्याख्यान—सहस्रशीर्षादि विशेषणोक्त पुरुष सर्वत्र परिपूर्ण (पूर्णत्वात्पुरि शयनाद्वा पुरुष इति निरुक्तोक्तेः) है, उस पुरुष को मैं जानता हूं अर्थात् सब मनुष्यों को उचित है कि उस परमात्मा को अवश्य जानें, उसको कभी न भूलें, अन्य किसी को ईश्वर न जानें, वह कैसा है कि "महान्तम्" बड़ों से भी बड़ा, उससे बड़ा वा तुल्य कोई नहीं है "आदित्यवर्णम्" आदित्य का रचक और प्रकाशक वही एक परमात्मा है तथा वह सदा स्वप्रकाशस्वरूप ही है, किंच "तमसः परस्तात्" तम जो अन्धकार अविद्यादि दोष उससे रहित ही है तथा स्वभक्त, धर्मात्मा, सत्य- प्रेमी जनों को भी अविद्यादिदोषरहित सद्यः करने वाला वही परमात्मा है, विद्वानों का ऐसा निश्चय है कि परब्रह्म के ज्ञान और उसकी कृपा के विना कोई जीव कभी सुखी नहीं होता। "तमेव विदित्वेत्यादि०" उस परमात्मा को जान के ही जीव मृत्यु को उल्लङ्घन कर सकता है, अन्यथा नहीं क्योंकि "नाऽन्यः, पन्था, विद्यतेऽयनाय" विना परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के मुक्ति का मार्ग कोई नहीं है, ऐसी परमात्मा की दृढ़ आज्ञा है, सब मनुष्यों को इसमें वर्त्तना चाहिये और सब पाखण्ड और जञ्जाल अवश्य छोड़ देना चाहिये ।। ८ ।।

मूल प्रार्थना

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।
बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ९ ॥

यजु० १९ । ९ ॥

व्याख्यान—हे स्वप्रकाश ! अनन्त तेज ! आप अविद्यान्धकार से रहित हो, किंच सत्य विज्ञान तेजःस्वरूप हो, आप कृपादृष्टि से मुझमें वही तेज धारण करो,

जिससे मैं निस्तेज, दीन और भीरु कहीं कभी न होऊं, हे अनन्तवीर्य परमात्मा ! आप वीर्यस्वरूप हो, आप सर्वोत्तम बल स्थिर मुझमें भी रक्खें, हे अनन्तपराक्रम ! आप ओजः (पराक्रमस्वरूप) हो सो मुझमें भी उसी पराक्रम को सदैव धारण करो, हे दुष्टानामुपरि क्रोधकृत् ! मुझमें भी दुष्टों पर क्रोध धारण कराओ, हे अनन्त सहन-स्वरूप मुझमें भी आप सहनसामर्थ्य धारण करो अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इनके तेजादि गुण कभी मुझमें से दूर न हों, जिससे मैं आपकी भक्ति का स्थिर अनुष्ठान करूं और आपके अनुग्रह से संसार में भी सदा सुखी रहूं ॥ ९ ॥

मूल स्तुति

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश ॥ १० ॥

यजु० ३२ । ११ ॥

व्याख्यान—सब जीवों में (अर्थात् आकाश और प्रकृति से लेके पृथिवीपर्य्यन्त सब संसार में) वह परमेश्वर व्याप्त होके परिपूर्ण भर रहा है तथा सब लोक, सब पूर्वादि दिशा और ऐशान्यादि उपदिशा, ऊपर, नीचे अर्थात् एक कण भी उसके बिना अपर्याप्त (खाली) नहीं "प्रथमजाम्" मुख्य प्राणी अपने आत्मा से अत्यन्त सत्याचरण विद्या, श्रद्धा, भक्ति से "ऋतस्य" यथार्थ सत्यस्वरूप परमात्मा को "उपस्थाय" यथावत् जान उपस्थित (निकट प्राप्त) "अभिसंविवेश" अभिमुख होके उसमें 'प्रविष्ट' अर्थात् परमानन्दस्वरूप परमात्मा में प्रवेश करके, सब दुःखों से छूट उसी परमानन्द में रहता है ॥ १० ॥

मूल प्रार्थना

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ११ ॥

यजु० ३४ । ३६ ॥

व्याख्यान—हे भगवन् ! परमैश्वर्यवान् भग ऐश्वर्य के दाता, संसार वा परमार्थ में आप ही हो तथा "भगप्रणेतः" आपके ही स्वाधीन सकल ऐश्वर्य है, अन्य किसी के आधीन नहीं, आप जिसको चाहो उसको ऐश्वर्य देओ, सो आप कृपा से हम लोगों का दारिद्र्य-छेदन करके हमको परमैश्वर्यवाले करें क्योंकि ऐश्वर्य के प्रेरक आप ही हो, हे "सत्यराधः" भगवन् ! सत्यैश्वर्य को सिद्धि करनेवाले आप ही हो, सो आप नित्य ऐश्वर्य हमको दीजिये तथा जो मोक्ष कहाता है उस सत्य ऐश्वर्य का दाता आप से भिन्न कोई भी नहीं है, हे सत्यभग ! पूर्ण ऐश्वर्य सर्वोत्तम बुद्धि हमको आप दीजिये ।

जिससे हम लोग आपके गुण और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान, ज्ञान इनको यथावत् प्राप्त हों, हमको सत्यबुद्धि, सत्यकर्म और सत्यगुणों को "उदव" (उद्गमय प्रापय) प्राप्त कर, जिससे हम लोग सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जानें "भग प्र नो जनय" हे सर्वैश्वर्योत्पादक। हमारे लिये ऐश्वर्य को अच्छे प्रकार से उत्पन्न कर, सर्वोत्तम गाय, घोड़े और मनुष्य इनसे सहित अत्युत्तम ऐश्वर्य हमको सदा के लिये दीजिये, हे सर्वशक्तिमन्! आपकी कृपा से सब दिन हम लोग उत्तम-उत्तम पुरुष, स्त्री और सन्तान, भृत्यवाले हों, आप से हमारी अधिक यही प्रार्थना है कि कोई मनुष्य हम में दुष्ट और मूर्ख न रहै, न उत्पन्न हो जिससे हम लोगों की सर्वत्र सत्कीर्त्ति हो और निन्दा कभी न हो ॥ ११ ॥

मूल प्रार्थना

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ १२ ॥ यजु० ४०। ५ ॥

व्याख्यान—"तद् एजति" वह परमात्मा सब जगत् को यथायोग्य अपनी-अपनी चाल पर चला रहा है, सो अविद्वान् लोग ईश्वर में भी आरोप करते हैं कि वह भी चलता होगा परन्तु वह सब में पूर्ण है कभी चलायमान नहीं होता, अत एव "तन्नैजति" (यह प्रमाण है) स्वतः वह परमात्मा कभी नहीं चलता, एकरस निश्चल होके भरा है, विद्वान् लोग इसी रीति से ब्रह्म को जानते हैं "तद्दूरे" अधर्मात्मा, अविद्वान्, विचारशून्य, अजितेन्द्रिय, ईश्वरभक्तिरहित इत्यादि दोषयुक्त मनुष्यों से वह ईश्वर बहुत दूर है अर्थात् वे कोटि-कोटि वर्ष तक उसको नहीं प्राप्त होते, वे तब तक जन्ममरणादि दुःखसागर में इधर-उधर घूमते फिरते हैं कि जब तक उसको नहीं जानते "तद्वन्तिके" सत्यवादी सत्यकारी, सत्यमानी, जितेन्द्रिय, सर्वजनोपकारक, विद्वान्, विचारशील पुरुषों के 'अन्तिके' अत्यन्त निकट है, किंच वह सबके आत्माओं के बीच में अन्तर्यामी व्यापक होके सर्वत्र पूर्ण भर रहा है, वह आत्मा का भी आत्मा है क्योंकि परमेश्वर सब जगत् के भीतर और बाहर तथा मध्य अर्थात् एक तिलमात्र भी उसके विना खाली नहीं है, वह अखण्डैकरस सबमें व्यापक हो रहा है, उसी को जानने से ही सुख और मुक्ति होती है, अन्यथा नहीं ॥ १२ ॥

मूल प्रार्थना

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन

कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳪंस्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च । स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ॥ १३ ॥ यजु० १८ । २९ ॥

व्याख्यान—(यज्ञो वै विष्णुः यज्ञो वै ब्रह्म इत्याद्यैतरेयशतपथब्राह्मणश्रु०) यज्ञ यजनीय जो सब मनुष्यों का पूज्य इष्टदेव परमेश्वर उसके अर्थ अतिश्रद्धा से सब मनुष्य सर्वस्व समर्पण यथावत् करें, यही इस मन्त्र में उपदेश और प्रार्थना है कि हे सर्वस्वामिन् ईश्वर ! जो यह आपकी आज्ञा है कि सब लोग सब पदार्थ मेरे अर्पण करें, इस कारण हम लोग "आयुः" उमर, प्राण, चक्षु (आंख), कान, वाणी, मन, आत्मा, जीव, ब्रह्म, वेदविद्या और विद्वान्, ज्योति (सूर्यादि लोक अग्न्यादि पदार्थ), स्वर्ग (सुखसाधन), पृष्ठ (पृथिव्यादि सब लोक आधार) तथा पुरुषार्थ, यज्ञ (जो-जो अच्छा काम हम लोग करते हैं), स्तोम, स्तुति, यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद, चकार से अथर्ववेद, बृहद्रथन्तर, महारथन्तर, साम इत्यादि सब पदार्थ आपके समर्पण करते हैं, हम लोग तो केवल आपके ही शरण हैं, जैसी आप की इच्छा हो, वैसा हमारे लिये आप कीजिये, परन्तु हम लोग आपके सन्तान आपकी कृपा से "स्वरगन्म" उत्तम सुख को प्राप्त हों, जब तक जीवें तब तक सदा चक्रवर्त्ती राज्यादि भोग से सुखी रहै और मरणानन्तर भी हम सुखी ही रहैं । हे महादेवामृत ! हम लोग देव (परमविद्वान्) हों तथा अमृत मोक्ष जो आपकी प्राप्ति उसको प्राप्त हों "वेट्स्वाहा" आपकी आज्ञा का पालन और आपकी प्राप्ति में उद्योगी हों तथा अन्तर्यामी आप हृदय में आज्ञा करें अर्थात् जैसा हमारे हृदय में ज्ञान हो वैसा ही सदा भाषण करें, इससे विपरीत कभी नहीं, हे कृपानिधे ! हम लोगों का योगक्षेम (सब निर्वाह) आप ही सदा करो, आपके सहाय से सर्वत्र हमको विजय और सुख मिले ॥ १३ ॥

मूल स्तुति

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सᳪंरराणस्त्रीणि ज्योतीᳪंषि सचते स षोडशी ॥ १४ ॥

यजु० ८ । ३६ ॥

व्याख्यान—जिससे बड़ा, तुल्य वा श्रेष्ठ न हुआ, न है और न कोई कभी होगा, उसको परमात्मा कहना । जो "विश्वा भुवनानि" सब भुवन (लोक) सब पदार्थों के निवासस्थान असंख्यात लोकों को आवेश प्रविष्ट हो के पूर्ण हो रहा है, वही ईश्वर प्रजा का पति (स्वामी) है, सब प्रजा को रमा रहा और सब प्रजा में रम रहा है "त्रीणीत्यादि" तीन ज्योति अग्नि, वायु और सूर्य इनको जिसने रचा है, सब जगत् के व्यवहार और पदार्थविद्या की उत्पत्ति के लिये इन तीनों को मुख्य समझना "स

षोडशी" सोलहकला जिसने उत्पन्न की हैं, इससे सोलह कलावान् ईश्वर कहाता है, वे सोलहकला ये हैं—ईक्षण (विचार) १ प्राण २ श्रद्धा ३ आकाश ४ वायु ५ अग्नि ६ जल ७ पृथिवी ८ इन्द्रिय ९ मन १० अन्न ११ वीर्य (पराक्रम) १२ तप (धर्मानुष्ठान) १३ मन्त्र (वेदविद्या) १४ कर्मलोक (चेष्टास्थान) १५ और लोकों में नाम १६, इतनी कलाओं के बीच में सब जगत् है और परमेश्वर में अनन्त कला हैं, उसकी उपासना छोड़ के जो दूसरे की उपासना करता है, वह सुख को प्राप्त कभी नहीं होता किन्तु सदा दुःख में ही पड़ा रहता है ।। १४ ।।

मूल स्तुति

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।

सचस्वा नः स्वस्तये ।। १५ ।। यजु० ३ । २४ ।।

व्याख्यान—(ब्रह्म ह्यग्निः" इत्यादि शतपथादिप्रामाण्याद् ब्रह्मैवात्राग्निर्ग्राह्यः) हे विज्ञानस्वरूपेश्वराग्ने ! आप हमारे लिये "सूपायनः" सुख से प्राप्त, श्रेष्ठोपाय के प्रापक, अत्युत्तम स्थान के दाता कृपा से सर्वदा हो तथा रक्षक भी हमारे आप ही हो, हे स्वस्तिद परमात्मन् ! सब दुःखों का नाश करके हमारे लिये सुख का वर्त्तमान सदैव कराओ, जिससे हमारा वर्त्तमान श्रेष्ठ ही हो "स नः पितेव सूनवे" जैसे करुणामय पिता अपने पुत्र को सुखी ही रखता है, वैसे आप हमको सदा सुखी रक्खो क्योंकि जो हम लोग बुरे होंगे तो उन आपकी शोभा नहीं होना, किञ्च सन्तानों को सुधारने से ही पिता की शोभा और बड़ाई होती है, अन्यथा नहीं ।। १५ ।।

मूल स्तुति

विभूरसि प्रवाहणः । वह्निरसि हव्यवाहनः ।

श्वात्रोऽसि प्रचेताः । तुथोऽसि विश्ववेदाः ।।

उशिगसि कविः । अङ्घारिरसि बम्भारिः । अवस्यूरसि दुवस्वान् ।

शुन्ध्यूरसि मार्जालीयः । सम्राडसि कृशानुः । परिषद्योऽसि पवमानः ।

नभोऽसि प्रतक्वा । मृष्टोऽसि हव्यसूदनः । ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ।।

समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः । अजोऽस्येकपात् । अहिरसि बुध्न्यः ।

वागस्यैन्द्रमसि सदोऽसि । ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम् ।

अध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ।।

१६ । १७ । १८ ।। यजु० ५ । ३१ । ३२ । ३३ ।।

व्याख्यान—हे व्यापकेश्वर ! आप विभु हो अर्थात् सर्वत्र प्रकाशित वैभवैश्वर्ययुक्त हो किन्तु और कोई नहीं, विभु होके आप सब जगत् के प्रवाहण (स्वस्वनियमपूर्वक चलानेवाले) तथा सबके निर्वाहकारक भी हो, हे स्वप्रकाशक सर्वरसवाहकेश्वर ! आप वह्नि हैं अर्थात् सब हव्य उत्कृष्ट रसों के भेदक, आकर्षक तथा यथावत् स्थापक हो, हे आत्मन् ! आप शीघ्र व्यापनशील हो तथा प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप प्रकृष्ट ज्ञान के देनेवाले हो, हे सर्ववित् ! आप तुथ और विश्ववेदा हो, "तुथो वै ब्रह्म" (यह शतपथ की श्रुति है) सब जगत् में विद्यमान, प्राप्त और लाभ करानेवाले हो ।। १६ ।। हे सर्वप्रिय ! आप "उशिक् कमनीयस्वरूप अर्थात् सब लोग जिनको चाहते हैं क्योंकि आप 'कवि' पूर्ण विद्वान् हो तथा आप 'अङ्घारि' हो अर्थात् स्वभक्तों का जो अघ (पाप) उसके अरि (शत्रु) हो उस समस्त पाप के नाशक हो तथा, "बम्भारिः" स्वभक्तों और सब जगत् के पालन तथा धारण करनेवाले हो "अवस्यूरसि दुवस्वान्" अन्नादि पदार्थ अपने भक्तों धर्मात्माओं को देने की इच्छा सदा करते हो तथा परिचरणीय विद्वानों से सेवनीयतम हो "शुन्ध्युरसि, मार्ज्जालीयः" शुद्धस्वरूप और जगत् के शोधक तथा पापों का मार्जन (निवारण) करने वाले आप ही हो, अन्य कोई नहीं "सम्राडसि कृशानुः" सब राजाओं के महाराज तथा कृश दीनजनों के प्राण के सुखदाता आप ही हो "परिषद्योसि पवमानः" हे न्यायकारिन् ! पवित्र परमेश्वर, सभा के आज्ञापक, सभ्य, सभापति,सभाप्रिय, सभारक्षक, आप ही हो तथा पवित्रस्वरूप पवित्रकारक, सभा से ही सुखदायक, पवित्रप्रिय, आप ही हो "नभोऽसि प्रतक्वा" हे निर्विकार ! आकाशवत् आप क्षोभरहित अतिसूक्ष्म होने से आपका नाम नभ है तथा "प्रतक्वा" सबके ज्ञाता, सत्यासत्यकारी जनों के कर्मों की साक्ष्य रखनेवाले कि जिसने जैसा पाप वा पुण्य किया हो, उसको वैसा फल मिले, अन्य का पुण्य वा पाप अन्य को कभी न मिले "मृष्टोसि हव्यसूदनः" मृष्ट शुद्धस्वरूप सब पापों के मार्जक, शोधक तथा "हव्यसूदनः" मिष्ट-सुगन्ध, रोगनाशक, पुष्टिकारक इन द्रव्यों से वायु-वृष्टि की शुद्धि करने-करानेवाले हो, अत एव सब द्रव्यों के विभागकर्त्ता आप ही हो, इससे आपका नाम "हव्यसूदन" है, "ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः" हे भगवन् ! आपका ही धाम स्थान सर्वगत सत्य और यथार्थस्वरूप है, यथार्थ (सत्य) व्यवहार में ही आप निवास करते हो "स्वः" आप सुखस्वरूप और सुखकारक हो तथा 'ज्योतिः' स्वप्रकाश और सबके प्रकाशक आप ही हो ।। १७ ।। "समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः" हे द्रवणीयस्वरूप ! सब भूतमात्र आप ही में द्रव हैं क्योंकि कार्य-कारण में ही मिले हैं, आप सबके कारण हो तथा सहज से सब जगत् को विस्तृत किया है, इससे आप "विश्वव्यचाः" हैं "अजोस्येकपात्" आपका जन्म कभी नहीं होता और यह सब जगत् आप के किञ्चिन्मात्र एक देश में है, आप अनन्त हो "अहिरसि बुध्न्यः" आपकी हीनता कभी नहीं होती तथा सब जगत् के मूलकारण और अन्तरिक्ष में भी सदा आप ही पूर्ण रहते हो "वागस्यैन्द्रमसि सदोसि" सब शास्त्र के उपदेशक अनन्तविद्यास्वरूप होने से आप वाक् हो, परमैश्वर्यस्वरूप सब विद्वानों में अत्यन्त शोभायमान होने से आप

ऐंद्र हो, सब संसार आप में ठहर रहा है, इससे आप सदा (सभास्वरूप) हो "ऋतस्य द्वारौ मा मा संताप्तम्" सत्यविद्या और धर्म ये दोनों मोक्षस्वरूप आप की प्राप्ति के द्वार हैं, उनको संतापयुक्त हम लोगों के लिये कभी मत रक्खो किन्तु सुखस्वरूप ही खुले रक्खो, जिससे हम लोग सहज से आपको प्राप्त हों "अध्वना-मित्यादि" हे अध्वपते ! परमार्थ और व्यवहार मार्गों में मुझको कहीं क्लेश मत होने दे किन्तु उन मार्गों में मुझको स्वस्ति (आनन्द) आपकी कृपा से रहै, किसी प्रकार का दुःख हमको न रहै ॥१८॥

मूल स्तुति

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
एनस एनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यै-
नसोऽवयजनमसि ॥ १९ ॥ यजु० ८ । १३ ॥

व्याख्यान—हे सर्वपापप्रणाशक ! "देवकृतः०" इन्द्रिय, विद्वान् और दिव्यगुणयुक्त जन के दुःख के नाशक एक ही आप हो अन्य कोई नहीं, एवं मनुष्य (मध्यस्थजन), पितृ (परमविद्यायुक्त जन) और "आत्मकृत०" जीव के पापों से तथा "एनस०" पापों से भी बड़े पापों से आप ही 'अवयजन' हो अर्थात् सर्व पापों से अलग हो और हम सब मनुष्यों को भी पाप से दूर रखनेवाले एक आप ही दयामय पिता हो, हे महानन्तविद्य ! जो-जो मैंने विद्वान् वा अविद्वान् हो के पाप किया हो, उन सब पापों का छुड़ानेवाला आपके विना कोई भी इस संसार में हमारा शरण नहीं है, इससे हमारे अविद्यादि सब पाप छुड़ा के शीघ्र हमको शुद्ध करो ॥ १९ ॥

मूल स्तुति

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽआसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २० ॥

यजु० १३ । ४ ॥

व्याख्यान—जब सृष्टि नहीं हुई थी तब एक अद्वितीय हिरण्यगर्भ (जो सूर्य्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्तिस्थान उत्पादक) है सो ही प्रथम था, वह सब जगत् का सनातन प्रादुर्भूत प्रसिद्ध पति है, वही परमात्मा पृथिवी से ले के प्रकृतिपर्यन्त जगत् को रच के धारण करता है, "कस्मै" (कः प्रजापतिः, प्रजापतिर्वैकस्तस्मै देवाय,

शतपथे) प्रजापति जो परमात्मा उसकी पूजा आत्मादि पदार्थों के समर्पण से यथावत् करें, उससे भिन्न की उपासना लेशमात्र भी हम लोग न करें, जो परमात्मा को छोड़ के वा उसके स्थान में दूसरे की पूजा करता है, उसकी और उस देश भर की अत्यन्त दुर्दशा होती है यह प्रसिद्ध है, इससे चेतो मनुष्यो ! जो तुमको सुख की इच्छा हो तो एक निराकार परमात्मा की यथावत् भक्ति करो, अन्यथा तुमको कभी सुख न होगा ॥ २० ॥

मूल प्रार्थना

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥
शं नो वातः पवताᳬ शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभिवर्षतु ॥
अहानि शं भवन्तु नः शᳬरात्रीः प्रतिधीयताम् ।
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥
२१ । २२ । २३ ॥ यजु० ३६ । ८ । १० । ११ ॥

व्याख्यान—हे इन्द्र ! आप परमैश्वर्ययुक्त सब संसार के राजा हो, सर्वप्रकाशक हो, हे रक्षक ! आप कृपा से हम लोगों के "द्विपदे" जो पुत्रादि, उनके लिये परमसुखदायक हो तथा "चतुष्पदे" हस्ती अश्व और गवादि पशुओं के लिये भी परमसुखदायक हो, जिससे हम लोगों को सदा आनन्द ही रहै ॥ २१ ॥ हे सर्वनियन्तः ! हमारे लिये सुखकारक, सुगन्ध, शीतल और मन्द-मन्द वायु सदैव चले, एवं सूर्य भी सुखकारक तपे तथा मेघ भी सुख का शब्द लिये अर्थात् गर्जनपूर्वक सदैव काल-काल में सुखकारक वर्षा वर्षे, जिससे आपके कृपापात्र हम लोग सुखानन्द ही में सदा रहैं ॥ २२ ॥ हे क्षणादि कालपते ! सब दिवस आपके नियम से सुखरूप ही हमको हों, हमारे लिये सर्व रात्रि भी आनन्द से बीतें, हे भगवन् ! दिन और रात्रियों को सुखकारक ही आप स्थापन करो, जिससे सब समय में हम लोग सुखी ही रहैं, हे सर्वस्वामिन् ! "इन्द्राग्नी" सूर्य तथा अग्नि ये दोनों हमको आप के अनुग्रह से और नानाविध रक्षाओं से सुखकारक हों "इन्द्रावरुणा रातहव्या" हे प्राणाधार ! हम से शुद्धिगुणयुक्त हुए आपकी प्रेरणा से वायु और चन्द्र हम लोगों के लिये सुखरूप ही सदा हों "इन्द्रापूषणा, वाजसातौ" हे प्राणपते ! आपकी रक्षा से पूर्ण आयु और बलयुक्त प्राणवाले हम लोग अपने अत्यन्त पुरुषार्थयुक्त युद्ध में स्थिर रहैं, जिससे शत्रुओं के सम्मुख हम निर्बल कभी न हों "इन्द्रासोमा सुविताय शंयोः" (प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी इत्यादि शतपथे) हे महाराज ! आपके प्रबन्ध से राजा और प्रजा परस्पर विद्यादि सत्यगुणयुक्त होके अपने

ऐश्वर्य का उत्पादन करें तथा आपकी कृपा से परस्पर प्रीतियुक्त हों, अत्यन्त सुख लाभों को प्राप्त हों, आप हम पुत्र लोगों को सुखी देख के अत्यन्त प्रसन्न हों और हम भी प्रसन्नता से आप और जो आपकी सत्य आज्ञा उसमें ही तत्पर हों ।। २३ ।।

मूल स्तुति

प्र तद्वो॑चेद॒मृतं॒ नु वि॒द्वान् ग॑न्ध॒र्वो धाम॒ विभृ॑तं॒ गुहा॒ सत् ।
त्रीणि॑ प॒दानि॒ निहि॑ता॒ गुहा॑स्य॒ यस्तानि॒ वेद॒ स पि॒तुः पि॒ताऽस॑त् ।। २४ ।।

यजु० ३२ । ९ ।।

व्याख्यान— हे वेदादिशास्त्र और विद्वानों के प्रतिपादन करने योग्य ! जो अमृत (मरणादि दोषरहित) मुक्तों का धाम (निवासस्थान) सर्वगत सबका धारण और पोषण करनेवाला, सबकी बुद्धियों का साक्षी ब्रह्म है, उस आपका उपदेश तथा धारण जो विद्वान् जानता है, वह गन्धर्व कहाता है (गच्छतीति गं=ब्रह्म, तद्धरतीति स गन्धर्वः) सर्वगत ब्रह्म को जो धारण करनेवाला उसका नाम गन्धर्व है तथा परमात्मा के तीन पद हैं—जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने के सामर्थ्य को तथा ईश्वर को जो स्वहृदय में जानता है, वह पिता का भी पिता है अर्थात् विद्वानों में भी विद्वान् है ।। २४ ।।

मूल प्रार्थना

द्यौः शान्ति॑र॒न्तरि॑क्ष॒ꣳ शान्तिः॑ पृथि॒वी शान्ति॑रापः॒ शान्ति॒रोष॑धयः॒ शान्तिः॑ ।
वन॒स्पत॑यः॒ शान्ति॒र्विश्वे॑दे॒वाः शान्ति॒र्ब्रह्म॒ शान्तिः॒ सर्व॒ꣳ शान्तिः॒ शान्ति॑रे॒व
शान्तिः॒ सा मा॒ शान्ति॑रेधि ।। २५ ।। यजु० ३६ । १७ ।।

व्याख्यान—हे सर्वदुःख की शान्ति करनेवाले ! सब लोकों के ऊपर जो आकाश सो सर्वदा हम लोगों के लिये शान्त (निरुपद्रव) सुखकारक ही रहे, अन्तरिक्ष मध्यस्थ लोक और उसमें स्थित वायु आदि पदार्थ, पृथिवी, पृथिवीस्थ पदार्थ, जल, जलस्थ पदार्थ, ओषधि, तत्रस्थ गुण, वनस्पति, तत्रस्थ पदार्थ, विश्वेदेव (जगत् के सब विद्वान्) तथा विश्वद्योतक वेदमन्त्र, इन्द्रिय, सूर्यादि, उनकी किरण, तत्रस्थ गुण, ब्रह्म, परमात्मा तथा वेदशास्त्र, स्थूल और सूक्ष्म, चराऽचर जगत् ये सब पदार्थ हमारे लिये हे सर्वशक्तिमन् परमात्मा ! आपकी कृपा से शान्त (निरुपद्रव) सदानुकूल सुखदायक हों, मुझको भी वह शान्ति प्राप्त हो, जिससे मैं भी आपकी कृपा से शान्त, दुष्ट क्रोधादि उपद्रव रहित होऊं तथा सब संसारस्थ जीव भी दुष्ट क्रोधादि उपद्रवरहित ही हों ।। २५ ।।

मूल स्तुति

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ २६ ॥

यजु० १६ । ४१ ॥

व्याख्यान—हे कल्याणस्वरूप, कल्याणकर ! आप शंभव हो (मोक्ष सुखस्वरूप और मोक्ष सुख के करने वाले हो), आपको नमस्कार है, आप मयोभव हो, सांसारिक सुख के करने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूं, आप शङ्कर हो, आप से ही जीवों का कल्याण होता है अन्य से नहीं तथा 'मयस्कर' अर्थात् मन, इन्द्रिय, प्राण और आत्मा को सुख करने वाले आप ही हो, आप शिव (मङ्गलमय) हो तथा शिवतर (अत्यन्त कल्याणस्वरूप और कल्याणकारक) हो, इससे आपको हम लोग वारम्वार नमस्कार करते हैं (नमो नम इति यज्ञः शतपथे) श्रद्धा भक्ति से जो जन ईश्वर को नमस्कारादि करता है सो मङ्गलमय ही होता है ॥ २६ ॥

मूल प्रार्थना

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २७ ॥

यजु० २५ । २१ ॥

व्याख्यान—हे देवेश्वर ! देव विद्वानो ! हम लोग कानों से सदैव भद्र कल्याण को ही सुनें, अकल्याण की बात भी न सुनें । हे यजनीयेश्वर ! हे यज्ञकर्त्तारो ! हम आँखों से कल्याण (मङ्गलसुख) को ही सदा देखें, हे जनो ! हे जगदीश्वर ! हमारे सब अङ्ग-उपाङ्ग (श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपाङ्ग) स्थिर (दृढ़) सदा रहें, जिनसे हम लोग स्थिरता से आपकी स्तुति और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान सदा करें तथा हम लोग आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक आयु को विविध सुखपूर्वक प्राप्त हों अर्थात सदा सुख में ही रहें ॥ २७ ॥

मूल स्तुति

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन ऽआवः ।
स बुध्न्या ऽउपमा ऽअस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ २८ ॥

यजु० १३ । ३ ॥

व्याख्यान—हे महीय परमेश्वर ! आप बड़ों से भी बड़े हो, आप से बड़ा वा आप के तुल्य कोई नहीं है "जज्ञानम्" सब जगत् में व्यापक (प्रादुर्भूत) हो, सब जगत् के प्रथम (आदिकारण) आप ही हो, सूर्यादि लोक "सीमतः" सीमा से युक्त (मर्यादा-सहित) "सुरुचः" आप से प्रकाशित हैं, "पुरस्तात्" इन को पूर्व रच के आप ही धारण कर रहे हो, (व्यावः) इन सब लोकों को विविध नियमों से पृथक्-पृथक् यथायोग्य वर्त्ता रहे हो, "वेनः" आप के आनन्दस्वरूप होने से ऐसा कोई जन संसार में नहीं है जो आपकी कामना न करे, किन्तु सब ही आपको मिला चाहते हैं तथा आप अनन्त विद्यायुक्त हो, सब रीति से रक्षक आप ही हो, सो ही परमात्मा "बुध्न्याः" अन्तरिक्षान्तर्गत दिशादि पदार्थों को "विवः" विवृत (विभक्त) करता है वे, अन्तरिक्षादि "उपमा" सब व्यवहारों में उपयुक्त होते हैं और वे इस विविध जगत् के निवासस्थान हैं, "सत्" विद्यमान स्थूल जगत् "असत्" अविद्या चक्षुरादि इन्द्रियों से अगोचर इस विविध जगत् की "योनि" आदि कारण आपको ही वेद शास्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं, इससे इस जगत् के माता-पिता आप ही हैं, हम लोगों के भजनीय इष्टदेव हैं ।। २८ ।।

मूल प्रार्थना

सुमित्रिया न ऽ आप ऽ ओषधयः सन्तु । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।। २९ ।। यजु० ६ । २२ ।। ३६ । २३ ।।

व्याख्यान—हे सर्वमित्रसम्पादक ! आपकी कृपा से प्राण और जल तथा विद्या और ओषधी "सुमित्रिया" (सुखदायक) हम लोगों के लिये सदा हों, कभी प्रतिकूल न हों और जो हमसे द्वेष अप्रीति शत्रुता करता है तथा जिस दुष्ट से हम द्वेष करते हैं, हे न्यायकारिन् ! उसके लिये "दुर्मित्रिया" पूर्वोक्त प्राणादि प्रतिकूल दुःखकारक ही हों अर्थात् जो अधर्म करे उसको आपके रचे जगत् के पदार्थ दुःखदायक ही हों, जिससे वह [अधर्म न करे और] हमको दुःख न दे सके, पुनः हम लोग सदा सुखी ही रहें ।। २९ ।।

मूल प्रार्थना

य ऽ इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
स ऽ आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२।।ऽआविवेश ।। ३० ।।

यजु० १७ । १७ ।।

व्याख्यान—"होता" उत्पत्ति समय में देने और प्रलय समय में सबको लेनेवाला परमात्मा ही है "ऋषिः" सर्वज्ञ इन सब लोक-लोकान्तर भुवनों का अपने सामर्थ्य-

कारण में होम (प्रलय करके) "न्यसीदत्" नित्य अवस्थित रहता है, सो ही हमारा पिता है फिर जब "द्रविण" द्रव्यरूप जगत् को स्वेच्छा से उत्पन्न किया चाहता है, उस "आशिषा" सामर्थ्य से यथायोग्य विविध जगत् को सहजस्वभाव से रच देता है, इस चराचर "प्रथमच्छत्" विस्तीर्ण जगत् को रच के अनन्तस्वरूप से आच्छादित करता है और अन्तर्यामी साक्षीस्वरूप उसमें प्रविष्ट हो रहा है अर्थात् बाहर और भीतर परिपूर्ण हो रहा है, वही हमारा निश्चित पिता है, उसकी सेवा छोड़ के जो मनुष्य अन्य मूर्त्यादि की सेवा करता है, वह कृतघ्नत्वादि महादोषयुक्त हो के सदैव दुःखभागी होता है, जो मनुष्य परमदयामय पिता की आज्ञा में रहता है, वह सर्वानन्द का सदैव भोग करता है ।। ३० ।।

मूल स्तुति

इषे पिन्वस्व । ऊर्जे पिन्वस्व । ब्रह्मणे पिन्वस्व । क्षत्राय पिन्वस्व । द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व । धर्मासि सुधर्मे । अमेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ।। ३१ ।। यजु० ३८ । १४ ।।

व्याख्यान—हे सर्वसौख्यप्रदेश्वर ! हमको "इषे" उत्तमान्न के लिये पुष्ट कर, अन्न के अपचन वा कुपच के रोगों से बचा तथा विना अन्न के दुःखी हम लोग कभी न हों । हे महाबल ! "ऊर्जे" अत्यन्त पराक्रम के लिये हमको पुष्ट कर । हे वेदोत्पादक! "ब्रह्मणे" सत्य वेदविद्या के लिये बुद्ध्यादि बल से सदैव हमको पुष्ट और बलयुक्त कर । हे महाराजाधिराज परब्रह्मन् ! "क्षत्राय" अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर, अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों । हे स्वर्गपृथिवीश ! "द्यावापृथिवीभ्याम्" स्वर्ग (परमोत्कृष्ट मोक्षसुख) पृथिवी (संसारसुख) इन दोनों के लिये हमको समर्थ कर । हे सुष्ठु धर्मशील ! तू धर्मकारी हो तथा धर्मस्वरूप ही हो । हम लोगों को भी कृपा से धर्मात्मा कर । "अमेनि" तू निर्वैर है, हमको भी निर्वैर कर तथा कृपादृष्टि से "अस्मे" (अस्मभ्यम्) हमारे लिये "नृम्णानि" विद्या, पुरुषार्थ, हस्ती, अश्व, सुवर्ण, हीरादिरत्न, उत्कृष्ट राज्य, उत्तम पुरुष और प्रीत्यादि पदार्थों को धारण कर, जिससे हम लोग किसी पदार्थ के विना दुःखी न हों । हे सर्वाधिपते ! ब्राह्मण (पूर्णविद्यादि सद्गुणयुक्त) क्षत्र (बुद्धि, विद्या तथा शौर्यादि गुणयुक्त) "विश" अनेक विद्योद्यम, बुद्धि, विद्या, धन और धान्यादि बलयुक्त तथा शूद्रादि भी सेवादि गुणयुक्त उत्तम हमारे राज्य में हों, इन सबका धारण आप ही करो, जिससे अखण्ड ऐश्वर्य हमारा आप की कृपा से सदा बना रहै ।।३१।।

मूल स्तुति

किꣳ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ ३२ ॥

यजु० १७ । १८ ॥

व्याख्यान—(प्रश्नोत्तर विद्या से—) इस संसार का अधिष्ठान क्या है ? कारण और उत्पादक कौन है ? किस प्रकार से है ? तथा रचना करनेवाले ईश्वर का अधिष्ठानादि क्या है ? तथा निमित्तकारण और साधन—जगत् वा ईश्वर के क्या हैं, (उत्तर) "यतः" जिसका विश्व (जगत् कर्म) किया हुआ है, उस विश्वकर्मा परमात्मा ने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत् को रचा है, वही इस सब जगत् का अधिष्ठान, निमित्त और साधनादि है, उसने अपने अनन्त सामर्थ्य से इस सब जीवादि जगत् को यथायोग्य रचा और भूमि से ले के स्वर्ग पर्यन्त रच के स्व महिमा से "और्णोत्" आच्छादित कर रक्खा है और परमात्मा का अधिष्ठानादि परमात्मा ही है अन्य कोई नहीं, सबका भी उत्पादन, रक्षण, धारणादि वही करता है तथा आनन्दमय है और वह ईश्वर कैसा है ? कि "विश्वचक्षाः" सब संसार का द्रष्टा है, उसको छोड़ के अन्य का आश्रय जो करता है, वह दुःखसागर में क्यों न डूबेगा ? ॥३२॥

मूल प्रार्थना

तनूपाऽ अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि । आयुर्दाऽ अग्नेऽस्यायुर्मे देहि ।
वर्चोदाऽ अग्नेऽसि वर्चो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वाऽ ऊनं तन्मऽआपृण ॥ ३३ ॥

यजु० ३ । १७ ॥

व्याख्यान—हे सर्वरक्षकेश्वराग्ने ! तू हमारे शरीर का रक्षक है। सो शरीर को कृपा से पालन कर, हे महावैद्य ! आप आयु (उमर) बढ़ानेवाले हो, मुझको सुखरूप उत्तमायु दीजिये, हे अनन्त विद्यातेजयुक्त ! आप "वर्चः" विद्यादि तेज अर्थात् यथार्थ विज्ञान देनेवाले हो, मुझको सर्वोत्कृष्ट विद्यादि तेज देओ, पूर्वोक्त शरीरादि की रक्षा से हमको सदा आनन्द में रक्खो और जो-जो कुछ भी शरीरादि में "ऊनम्" न्यून हो, उस-उस को कृपादृष्टि से सुख और ऐश्वर्य के साथ सब प्रकार से आप पूर्ण करो, किसी आनन्द वा श्रेष्ठ पदार्थ की न्यूनता हमको न रहै, आपके पुत्र हम लोग जब पूर्णानन्द में रहेंगे तभी आप पिता की शोभा है क्योंकि लड़के लोग छोटी-बड़ी चीज अथवा सुख पिता-माता को छोड़ किससे माँगें ? सो आप सर्वशक्तिमान् हमारे पिता, सब ऐश्वर्य तथा सुख देनेवालों में पूर्ण हो ॥३३॥

मूल स्तुति

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ ३४ ॥

यजु० १७ । १९ ॥

व्याख्यान—विश्व (सब जगत् में) जिसका चक्षु (दृष्टि) जिससे अदृष्ट कोई वस्तु नहीं तथा जिसके सर्वत्र मुख, बाहु, पग अन्य श्रोत्रादि भी हैं, जिसकी दृष्टि में अर्थात् सर्वदृक्, सर्ववक्ता, सर्वाधारक और सर्वगत ईश्वर व्यापक है, उसी से जब डरेगा तभी धर्मात्मा होगा अन्यथा कभी नहीं, वही विश्वकर्म्मा परमात्मा एक ही अद्वितीय है, पृथिवी से लेके स्वर्गपर्य्यन्त जगत् का कर्त्ता है, जिस-जिस ने जैसा-जैसा पाप वा पुण्य किया है, उस-उस को न्यायकारी दयालु जगत्पिता पक्षपात छोड़ के अनन्त बल और पराक्रम इन दोनों बाहुओं से सम्यक् "पतत्रैः" प्राप्त होने वाले सुख-दुःख फल दोनों से प्राप्त सब जीवों को "धमति" (धमन-कम्पन) यथायोग्य जन्ममरणादि को प्राप्त करा रहा है, उसी निराकार, अज, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयामय, ईश्वर से अन्य को कभी न मानना चाहिये, वही याचनीय, पूजनीय, हमारा प्रभु स्वामी और इष्टदेव है, उसी से सुख हमको होगा, अन्य से कभी नहीं ॥३४॥

मूल स्तुति

भूर्भुवः स्वः । सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ।
नर्य प्रजां मे पाहि । शᳬस्य पशून्मे पाहि अथर्य पितुं मे पाहि ॥ ३५ ॥

यजु० ३ । ३७ ॥

व्याख्यान—हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर ! आप "भूः" सदा वर्त्तमान हो "भुवः" वायु आदि पदार्थों के रचनेवाले "स्वः" सुखरूप लोक के रचनेवाले हो, हमको तीन लोक का सुख दीजिये, हे सर्वाध्यक्ष ! आप कृपा करो, जिससे कि मैं पुत्र-पौत्रादि उत्तम गुणवाली प्रजा से श्रेष्ठ प्रजावाला होऊं, सर्वोत्कृष्ट वीर योद्धाओं से "सुवीरः" युद्ध में सदा विजयी होऊं, हे महापुष्टिप्रद ! आपके अनुग्रह से अत्यन्त विद्यादि तथा सोम ओषधि सुवर्णादि और नैरोग्यादि से सर्वपुष्टियुक्त होऊं, हे "नर्य" नरों के हितकारक ! मेरी प्रजा की रक्षा आप करो, हे "शंस्य" स्तुति करने के योग्य ईश्वर ! हस्त्यश्वादि पशुओं का आप पालन करो, हे "अथर्य" व्यापक ईश्वर ! "पितुम्" मेरे अन्न की रक्षा कर, हे दयानिधे ! हम लोगों को सब उत्तम पदार्थों से परिपूर्ण और सब दिन आप आनन्द में रक्खो ॥३५॥

मूल स्तुति

किंस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ ३६ ॥

यजु० १७ । २० ॥

व्याख्यान—(प्रश्न) विद्या क्या है ? वन और वृक्ष किसको कहते हैं ? (उत्तर) जिस सामर्थ्य से विश्वकर्मा ईश्वर ने जैसे तक्षा (बढ़ई) अनेकविध रचना से अनेक पदार्थ रचता है, वैसे ही स्वर्ग (सुखविशेष) और भूमि मध्य (सुखवाला लोक) तथा नरक (दुःखविशेष) और सब लोकों को रचा है, उसी को वन और वृक्ष कहते हैं, हे "मनीषिणः" विद्वानो ! जो सब भुवनों का धारण करके सब जगत् में और सबके ऊपर विराजमान हो रहा है, उसके विषय में प्रश्न तथा उसका निश्चय तुम लोग करो "मनसा" उसके विज्ञान से जीवों का कल्याण होता है, अन्यथा नहीं ॥३६॥

मूल प्रार्थना

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम
शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ३७ ॥

यजु० ३६ । २४ ॥

व्याख्यान—वह ब्रह्म, "चक्षुः" सर्वदृक् चेतन है तथा 'देव' अर्थात् विद्वानों के लिये वा मन आदि इन्द्रियों के लिये हितकारक मोक्षादि सुख का दाता है "पुरस्तात्" सबका आदि प्रथम कारण वही है "शुक्रम्" सबका करनेवाला किंवा शुद्धस्वरूप है "उच्चरत्" प्रलय के ऊर्ध्व वही रहता है, उसी की कृपा से हम लोग शत (१००) वर्ष तक देखैं, जीवैं, सुनैं, कहैं, कभी पराधीन न हों अर्थात् ब्रह्मज्ञान, बुद्धि और पराक्रम सहित इन्द्रिय तथा शरीर सब स्वस्थ रहैं, ऐसी कृपा आप करें कि कोई अङ्ग मेरा निर्बल (क्षीण) और रोगयुक्त न हो तथा शत (१००) वर्ष से अधिक भी आप कृपा करें कि शत (१००) वर्ष के उपरान्त भी हम देखैं, जीवैं, सुनैं, कहैं और स्वाधीन ही रहैं ॥ ३७ ॥

मूल प्रार्थना

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥ ३८ ॥

यजु० १७ । २१ ॥

व्याख्यान—हे सर्वविधायक विश्वकर्मन्नीश्वर ! जो तुम्हारे सुरचित उत्तम, मध्यम, निकृष्ट त्रिविध धाम (लोक) हैं, उन सब लोकों की शिक्षा हम आपके सखाओं को करो, यथार्थविद्या होने से सब लोकों में सदा सुखी ही रहैं तथा इन लोकों के "हविषि" दान और ग्रहण व्यवहार में हम लोग चतुर हों, हे "स्वधावः" स्वसामर्थ्यादि धारण करनेवाले ! हमारे शरीरादि पदार्थों को आप ही बढ़ानेवाले हैं "यजस्व" हमारे लिये विद्वानों का सत्कार, सब सज्जनों के सुखादि की संगति, विद्यादि गुणों का दान आप स्वयं करो, आप अपनी उदारता से ही हमको सब सुख दीजिये किञ्च हम लोग तो आपके प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं, सर्वथा आपके अनुकूल वर्त्तमान नहीं कर सकते परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं, इससे महको स्वकृपा-कटाक्ष से सुखी करें ।। ३८ ।।

मूल स्तुति

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु ।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ।। ३९ ।। यजु० ३६ । २ ।।

व्याख्यान—हे सर्वसन्धायकेश्वर ! मेरे चक्षु (नेत्र), हृदय (प्राणात्मा), मन, बुद्धि, विज्ञान, विद्या और सब इन्द्रिय, इनके छिद्र, निर्बलता, राग, चाञ्चल्य यद्वा मन्दत्वादि विकार इनका निवारण (निर्दोषत्व) करके सत्यधर्मादि में स्थापन आप ही करो, क्योंकि आप 'बृहस्पति" (सबसे बड़े) हो, सो अपनी बड़ाई की ओर देख के इस बड़े काम को आप अवश्य करें, जिससे हम लोग आप और आपकी आज्ञा के सेवन में यथार्थ तत्पर हों, मेरे सब छिद्रों को आप ही ढांकें, आप सब भुवनों के पति हैं इसलिये आप से वारंवार प्रार्थना हम लोग करते हैं कि सब दिन हम लोगों पर कृपादृष्टि से कल्याणकारक हों, हे परमात्मन् ! आपके विना हमारा कल्याण-कारक कोई नहीं है, हमको आपका ही सब प्रकार का भरोसा है, सो आप ही पूरा करेंगे ।। ३९ ।।

मूल प्रार्थना

विश्वकर्मा विमनाऽ आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऽऋषीन् परऽ एकमाहुः ।। ४० ।।
यजु० १७ । २६ ।।

व्याख्यान—सर्वज्ञ सर्वरचक ईश्वर "विश्वकर्मा" (विविधजगदुत्पादक) है तथा "विमनाः" विविध (अनन्त) विज्ञानवाला है, तथा "आद्विहाया" सर्वव्यापक और

आकाशवत् निर्विकार अक्षोभ्य सर्वाधिकरण है, वही सब जगत् का "धाता" धारणकर्त्ता है "विधाता" विविध विचित्र जगत् का उत्पादक है तथा "परम, उत" सर्वोत्कृष्ट है "सन्दृक्" यथावत् सबके पाप और पुण्यों को देखनेवाला है, जो मनुष्य उसी ईश्वर की भक्ति, उसी में विश्वास और उसी का सत्कार (पूजा) करते हैं, उसको छोड़ के अन्य किसी को लेशमात्र भी नहीं मानते, उन पुरुषों को ही सब इष्ट सुख मिलते हैं औरों को नहीं, वह ईश्वर अपने भक्तों को सुख में ही रखता है और वे भक्त सम्यक् स्वेच्छापूर्वक "मदन्ति" परमानन्द में ही सदा रहते हैं दुःख को नहीं प्राप्त होते। वह परमात्मा एक अद्वितीय है, जिस परमात्मा के सामर्थ्य में 'सप्त' अर्थात् पंच प्राण, अन्तःकरण और जीव ये सब प्रलयविषयक कारणभूत ही रहते हैं, वही जगत् की उत्पत्ति स्थिति, और प्रलय में निर्विकार आनन्दस्वरूप ही रहता है, उसी की उपासना करने से हम सदा सुख में रह सकते हैं ॥ ४० ॥

मूल स्तुति

चतुः स्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः ।
अप द्वेषोऽअप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥ ४१ ॥

यजु० ३८ । २० ॥

व्याख्यान—हे महावैद्य ! सर्वरोगनाशकेश्वर ! चार कोणवाली नाभि (मर्मस्थान) ऋत की भरी नैरोग्य और विज्ञान का घर "सप्रथाः" विस्तीर्ण सुखयुक्त आप की कृपा से हों तथा आपकी कृपा से "विश्वायुः" पूर्ण आयु हो, आप जैसे सर्वसामर्थ्य विस्तीर्ण हो, वैसे ही विस्तृत सुख युक्त विस्तार सहित सर्वायु हमको दीजिये, हे शान्तस्वरूप ! हम "अपद्वेषः" द्वेष रहित आपकी कृपा से तथा "अपह्वरः" चलन (कम्पन) रहित हों, आपकी आज्ञा और आपसे भिन्न को लेशमात्र भी ईश्वर न मानें, यही हमारा व्रत है, इससे अन्य व्रत को कभी न मानें किन्तु आपको "सश्चिम" सदा सेवें, यही हमारा परमनिश्चय है, इस परमनिश्चय की रक्षा आप ही कृपा से करें ॥ ४१ ॥

मूल प्रार्थना

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तꣳसम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ४२ ॥

यजु० ॥ १७ । २७ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो अपना "पिता" (नित्य पालन करनेवाला) "जनिता" (जनक) उत्पादक "विधाता" सब मोक्षसुखादि कामों का विधायक (सिद्धिकर्त्ता) "विश्वा" सब भुवन लोकलोकान्तर "धाम" अर्थात् स्थिति के स्थानों को यथावत् जाननेवाला सब जातमात्र भूतों में विद्यमान है, जो "देवा०" दिव्य सूर्यादिलोक तथा

और विद्वानों का नाम व्यवस्थादि करनेवाला एक अद्वितीय वही है अन्य कोई नहीं, वही स्वामी और पितादि हम लोगों का है, इसमें शंका नहीं रखनी तथा उसी परमात्मा के सम्यक् प्रश्नोत्तर करने में विद्वान्, वेदादि शास्त्र और प्राणीमात्र प्राप्त हो रहे हैं क्योंकि सब पुरुषार्थ यही है कि परमात्मा, उसकी आज्ञा और उसके रचे जगत् का यथार्थ से निश्चय (ज्ञान) करना, उसी से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार प्रकार के पुरुषार्थ के फलों की सिद्धि होती है अन्यथा नहीं, इस हेतु से तन, मन, धन और आत्मा इनसे प्रयत्नपूर्वक ईश्वर के साहाय्य से सब मनुष्यों को धर्मादि पदार्थों की यथावत् सिद्धि अवश्य करनी चाहिये ।। ४२ ।।

मूल स्तुति

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। ४३ ।।

यजु० ३४ । १ ।।

व्याख्यान—हे धर्म्यनिरुपद्रव परमात्मन् ! मेरा मन सदा "शिवसंकल्प" धर्म कल्याण संकल्पकारी ही आपकी कृपा से हो, कभी अधर्मकारी न हो, वह मन कैसा है ? कि जागते हुए पुरुष का दूर-दूर जाता-आता है, दूर जाने का जिसका स्वभाव ही है, अग्नि, सूर्यादि, श्रोत्रादि इन्द्रिय, इन ज्योतिप्रकाशकों का भी ज्योतिप्रकाशक है, अर्थात् मन के विना किसी पदार्थ का प्रकाश कभी नहीं होता, वह एक बड़ा चञ्चल वेगवाला मन आपकी कृपा से ही स्थिर, शुद्ध, धर्म्मात्मा, विद्यायुक्त हो सकता है "दैवम्" देव (आत्मा का) मुख्य साधक भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल का ज्ञाता है, वह आपके वश में ही है, उसको आप हमारे वश में यथावत् करें, जिससे हम कुकर्म्म में कभी न फसें, सदैव विद्या, धर्म्म और आपकी सेवा में ही रहें ।। ४३ ।।

मूल प्रार्थना

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ।। ४४ ।।

यजु० १७ । ३१ ।।

व्याख्यान—हे जीवो ! जो परमात्मा इन सब भुवनों का बनानेवाला विश्वकर्मा है, उसको तुम लोग लोग नहीं जानते हो, इसी हेतु से तुम "नीहारेण" अत्यन्त अविद्या से आवृत मिथ्यावाद नास्तिकत्व बकवाद करते हो, इससे दुःख ही तुमको

मिलेगा, सुख नहीं। तुम लोग "असुतृपः" केवल स्वार्थसाधक प्राणपोषणमात्र में ही प्रवृत्त हो रहे हो "उक्थशासश्चरन्ति" केवल विषय-भोगों के लिये ही अवैदिककर्म करने में प्रवृत्त हो रहे हो और जिसने ये सब भुवन रचे हैं, उस सर्वशक्तिमान् न्यायकारी परब्रह्म से उलटे चलते हो, अत एव उसको तुम नहीं जानते। (प्रश्न) वह ब्रह्म और हम जीवात्मा लोग ये दोनों एक हैं वा नहीं? (उत्तर) "युष्माकमन्तरं बभूव" ब्रह्म और जीव की एकता वेद और युक्ति से सिद्ध कभी नहीं हो सकती, क्योंकि जीव ब्रह्म का पूर्व से ही भेद है। जीव अविद्या आदि दोषयुक्त है, ब्रह्म अविद्यादि दोषयुक्त नहीं है, इससे यह निश्चित है, कि जीव और ब्रह्म एक न थे, न होंगे और न हैं, किंच व्याप्यव्यापक, आधाराधेय, सेव्यसेवकादि सम्बन्ध तो जीव के साथ ब्रह्म का है, इससे जीव ब्रह्म की एकता मानना किसी मनुष्य को योग्य नहीं ॥४४॥

मूल स्तुति

भग॑ एव भग॑वाँ२॥ऽस्तु देवास्तेन॑ व॒यं भग॑वन्तः स्याम।
तं त्वा॑ भग॒ सर्व॒ इज्जो॑हवीति॒ स नो॑ भग पुर ए॒ता भ॑वे॒ह ॥ ४५ ॥

यजु० ३४। ३८॥

व्याख्यान—हे सर्वाधिपते! महाराजेश्वर! आप "भग" परमैश्वर्यस्वरूप होने से भगवान् हो, हे (देवाः) विद्वानो! "तेन" (भगवता प्रसन्नेश्वरसहायेन) उस भगवान् प्रसन्न ईश्वर के सहाय से हम लोग परमैश्वर्ययुक्त हों, हे "भग" परमेश्वर सर्व संसार "तन्त्वा" उन आपको ही ग्रहण करने को अत्यन्त इच्छा करता है क्योंकि कौन ऐसा भाग्यहीन मनुष्य है जो आपको प्राप्त होने की इच्छा न करे, सो आप हमको प्रथम से प्राप्त हों फिर कभी हमसे आप और ऐश्वर्य अलग न हो, आप अपनी कृपा से इसी जन्म में परमैश्वर्य्य का यथावत् भोग हम लोगों को करावें, परजन्म में तो कर्मानुसार फल होता भी [=ही] है तथा आपकी सेवा में हम नित्य तत्पर रहें ॥४५॥

मूल प्रार्थना

ग॒णानां॑ त्वा ग॒णप॑तिᳬ हवामहे प्रि॒याणां॑ त्वा प्रि॒यप॑तिᳬ हवामहे नि॒धीनां॑ त्वा॑ नि॒धि॒प॑तिᳬ हवामहे वसो मम।
आ॒हम॑जा॒नि ग॒र्भ॒धमा त्वम॑जासि ग॒र्भ॒धम् ॥ ४६ ॥

यजु० २३। १९॥

व्याख्यान—हे समूहाधिपते ! आप मेरे सब समूहों के पति होने से आपको गणपति नाम से ग्रहण करता हूं तथा मेरे प्रिय कर्मचारी पदार्थ और जनों के पालक भी आप ही हैं, इससे आपको प्रियपति मैं अवश्य जानूं, इसी प्रकार मेरी सब निधियों के पति होने से आपको मैं निश्चित निधिपति जानूं, हे "वसो" सब जगत् को जिस सामर्थ्य से उत्पन्न किया है उस अपने सामर्थ्य का धारण और पोषण करने वाला आपको ही मैं जानूं, सबका कारण आपका सामर्थ्य है, यही सब जगत् का धारण और पोषण करता है, यह जीवादि जगत् तो जन्मता और मरता है परन्तु आप सदैव अजन्मा और अमृतस्वरूप हैं, आपकी कृपा से अधर्म, अविद्या, दुष्टभावादि को "अजानि" दूर फेंकूं तथा हम सब लोग आपकी ही "हवामहे" अत्यन्त स्पर्धा (प्राप्ति की इच्छा) करते हैं, सो आप अब शीघ्र हमको प्राप्त होओ, जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी ठिकाना न लगेगा ।। ४६ ।।

मूल प्रार्थना

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ।। ४७ ।। यजु० १ । ५ ।।

व्याख्यान—हे सच्चिदानन्द स्वप्रकाशरूप ईश्वराग्ने ! ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूंगा, सो इस व्रत को आप कृपा से सम्यक् सिद्ध करें तथा मैं अनृत अनित्य देहादि पदार्थों से पृथक् हो के इस यथार्थ सत्य जिसका कभी व्यभिचार विनाश नहीं होता, उस विद्यादि लक्षण धर्म को प्राप्त होता हूं, इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें, जिससे मैं सभ्य, विद्वान्, सत्याचरणी आपकी भक्तियुक्त धर्मात्मा होऊं ।। ४७ ।।

मूल स्तुति

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। ४८ ।।

यजु० २५ । १३ ।।

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा अपने लोगों को "आत्मदाः" आत्मा का देने वाला तथा आत्मज्ञानादि का दाता है, जीवप्राणदाता तथा "बलदाः" त्रिविध बल—एक मानस विज्ञानबल, द्वितीय इन्द्रियबल अर्थात् श्रोत्रादि की स्वस्थता तेजोवृद्धि, तृतीय शरीरबल महापुष्टि दृढाङ्गता और वीर्यादि वृद्धि इन तीनों बलों का जो दाता है, जिसके "प्रशिषम्" अनुशासन (शिक्षामर्यादा) को यथावत् विद्वान् लोग मानते हैं, सब प्राणी और अप्राणी जड़ चेतन विद्वान् वा मूर्ख उस परमात्मा के नियमों को कोई कभी उल्लङ्घन नहीं कर सकता, जैसे कि कान से सुनना, आँख से देखना, इसको

उलटा कोई नहीं कर सकता है, जिसकी छाया—आश्रय ही अमृत विज्ञानी लोगों का मोक्ष कहाता है तथा जिसकी अछाया (अकृपा) दुष्ट जनों के लिये वारम्बार मरण और जन्मरूप महाक्लेशदायक है, हे सज्जन मित्रो ! वही एक परमसुखदायक पिता है, आओ अपने सब मिल के प्रेम, विश्वास और भक्ति करें, कभी उसको छोड़ के अन्य को उपास्य न मानें, वह अपने को अत्यन्त सुख देगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।४८।।

मूल स्तुति

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथोऽन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शंय्योः शंय्योः ।। ४९ ।।

यजु० ३ । ४३ ।।

व्याख्यान—हे पश्वादिपते ! महात्मन् ! आपकी ही कृपा से उत्तम-उत्तम गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, बकरी, भेड़ तथा उपलक्षण से अन्य सुखदायक सब पशु और अन्न, सर्व रोगनाशक औषधियों का उत्कृष्ट रस "नः" हमारे घरों में नित्य स्थिर (प्राप्त) रख, जिससे किसी पदार्थ के विना हमको दुःख न हो, हे विद्वानो ! "वः" युष्माकम् तुम्हारे सङ्ग और ईश्वर की कृपा से क्षेमकुशलता और शान्ति तथा सर्वोपद्रव विनाश के लिये "शिवम्" मोक्ष सुख "शग्मम्" और इस संसार के सुख को मैं यथावत् प्राप्त होऊं। मोक्ष-सुख और प्रजा-सुख इन दोनों की कामना करनेवाला जो मैं हूं, उन मेरी उक्त दोनों कामनाओं को आप यथावत् शीघ्र पूरी कीजिये, आपका यही स्वभाव है कि अपने भक्तों की कामना [अवश्य] पूरी करना ।। ४९ ।।

मूल प्रार्थना

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।। ५० ।।

यजु० २५ । १८ ।।

व्याख्यान—हे सुख और मोक्ष की इच्छा करनेवाले जनो ! उस परमात्मा को ही "हूमहे" हम लोग प्राप्त होने के लिये अत्यन्त स्पर्धा करते हैं कि उसको हम कब मिलेंगे क्योंकि वह ईशान (सब जगत् का स्वामी) है और ईषण (उत्पादन) करने की इच्छा करनेवाला है। दो प्रकार का जगत् है—चर और अचर, इन दोनों प्रकार के जगत् का पालन करनेवाला वही है, "धियञ्जिन्वम्" विज्ञानमय, विज्ञान-प्रद और तृप्तिकारक ईश्वर से अन्य कोई नहीं है, उसको "अवसे" अपनी रक्षा के लिये हम स्पर्धा (इच्छा) से आह्वान करते हैं, जैसे वह ईश्वर "पूषा" हमारे लिये पोषणप्रद है, वैसे ही "वेदसाम्" धन और विज्ञानों की वृद्धि का "रक्षिता" रक्षक है तथा "स्वस्तये" निरुपद्रवता के लिये हमारा "पायुः" पालक वही है और "अदब्धः" हिंसा

रहित है, इसलिये ईश्वर जो निराकार सर्वानन्दप्रद है, हे मनुष्यो ! उसको मत भूलो, विना उस के कोई सुख का ठिकाना नहीं है ।। ५० ।।

मूल स्तुति

मयीदमिन्द्रं इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।

अस्माकᳩ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः० ।। ५१ ।।

यजु० २ । १० ।।

व्याख्यान—हे इन्द्र परमैश्वर्यवन् ईश्वर ! "मयि" मुझमें विज्ञानादि शुद्ध इन्द्रिय "रायः" और उत्तम धन को "मघवानः" परम धनवान् आप "सचन्ताम्" सद्यः प्राप्त करो, हे सर्व काम पूर्ण करनेवाले ईश्वर ! आपकी कृपा से हमारी आशा सत्य ही होनी चाहिये, (पुनरुक्त अत्यन्त प्रेम और त्वरा द्योतनार्थ है) हे भगवन् ! हम लोगों की इच्छा आप शीघ्र ही सत्य कीजिये, जिससे हमारी न्याययुक्त इच्छा के सिद्ध होने से हम लोग परमानन्द में सदा रहैं ।। ५१ ।।

मूल प्रार्थना

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।

सनिं मेधामयासिषᳩ स्वाहा ।। ५२ ।। यजु० ३२ । १३ ।।

व्याख्यान—हे सभापते विद्यामय न्यायकारिन् सभासद् सभाप्रिय ! सभा ही हमारा राजा न्यायकारी हो ऐसी इच्छावाले आप हमको कीजिये, किसी एक मनुष्य को हम लोग राजा कभी न बनावें किन्तु [सभा से ही सुखदायक] आपको ही हम सभापति सभाध्यक्ष राजा मानें, आप अद्‌भुत आश्चर्य विचित्र शक्तिमय हैं तथा प्रियस्वरूप ही हैं, "इन्द्र" जो जीव उसको कमनीय (कामना के योग्य) आप हो हैं, "सनिम्" सम्यक् भजनीय और सेव्य भी जीवों के आप ही हैं "मेधा" अर्थात् विद्या सत्यधर्मादि धारणा-वाली बुद्धि को हे भगवन् ! मैं याचता हूँ, सो आप कृपा करके मुझको देओ "स्व०" यही स्वकीय वाक् "आह" कहती है कि एक ईश्वर से भिन्न कोई जीवों को सेव्य नहीं है । यही वेद में ईश्वराज्ञा है, सो सब मनुष्यों को मानना योग्य है ।। ५२ ।।

मूल स्तुति

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।

तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।। ५३ ।। यजु० ३२ । १४ ।।

व्याख्यान—हे सर्वज्ञाग्ने परमात्मन् ! जिस विज्ञानवती यथार्थ धारणावाली

बुद्धि को देव समूह (विद्वानों के वृन्द) "उपासते" (धारण करते) हैं तथा यथार्थ पदार्थ-विज्ञानवाले "पितर" जिस बुद्धि के उपाश्रित होते हैं, उस बुद्धि के साथ इसी समय कृपा से मुझको मेधावी कर। "स्वाहा" इसको आप अनुग्रह और प्रीति से स्वीकार कीजिये, जिससे मेरी जड़ता सब दूर हो जाय ॥ ५३ ॥

मूल प्रार्थना

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ ५४ ॥

यजु० ३२ । १५ ॥

व्याख्यान—हे सर्वोत्कृष्टेश्वर ! आप "वरुणः" वर (वरणीय) आनन्दस्वरूप हो, कृपा से मुझको मेधा सर्वविद्यासम्पन्न बुद्धि दीजिये तथा "अग्निः" विज्ञानमय विज्ञानप्रद "प्रजापतिः" सब संसार के अधिष्ठाता पालक "इन्द्रः" परमैश्वर्यवान् "वायुः" विज्ञानवान् अनन्तबल "धाता" तथा सब जगत् का धारण और पोषण करने वाले आप मुझको अत्युत्तम मेधा (बुद्धि) दीजिये* ॥ ५४ ॥

मूल स्तुति

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ ५५ ॥

यजु० ३२ । १६ ॥

व्याख्यान—हे महाविद्य महाराज सर्वेश्वर ! मेरा ब्रह्म (विद्वान्) और क्षत्र (राजा, राज्य, महाचतुर न्यायकारी शूरवीर राजादि क्षत्रिय) ये दोनों आपकी अनन्त कृपा से यथावत् [अनुकूल] हों "श्रियम्" सर्वोत्तम विद्यादि लक्षणयुक्त महाराज्य श्री को हम प्राप्त हों। हे "देवाः" विद्वानो ! दिव्य ईश्वर गुण परमकृपा आदि, उत्तम विद्यादि लक्षण समन्वित श्री को मुझमें अचलता से धारण कराओ, उसको मैं अत्यन्त प्रीति से स्वीकार करूं और उस श्री को विद्यादि सद्गुण वा सर्व संसार के हित के लिये तथा राज्यादि प्रबन्ध के लिये व्यय करूं ॥ ५५ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुत विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां
महाविदुषां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचित
आर्याभिविनये द्वितीयः प्रकाशः सम्पूर्णः ॥

समाप्तश्चायङ्ग्रन्थः ॥

* अनेक वार मांगना ईश्वर से अत्यन्त प्रीतिद्योतनार्थ सद्यः दानार्थ है, बुद्धि से उत्तम पदार्थ कोई नहीं है, उसके होने से जीव को सब सुख होते हैं, इस हेतु से वारम्वार परमात्मा से बुद्धि की याचना करना श्रेष्ठ बात है।